माध्यमिक स्तर पर भूगोल शिक्षण में परम्परागत शिक्षण विधि एवं डाल्टन शिक्षण विधि की प्रभावशीलता का अध्ययन

अशोक कुमार
शोध छात्र, शिक्षाशास्त्र विभाग
इ0 वि0 वि0, इलाहाबाद
प्रो0 धनंजय यादव
आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग
इ0 वि0 वि0, इलाहाबाद

सारांश

शिक्षण प्रक्रिया में अध्यापक का प्रमुख कार्य विद्यार्थी तक अपनी बात को पहुचाना होता है। यह सफलता पूर्वक तभी समभव होता है, जब शिक्षण प्रक्रिया रूचिकर रहे। शिक्षण विधियॉ प्रत्यक्ष रूप से रूचि एवं शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करती है। भूगोल शिक्षण मे परम्परागत शिक्षण विधि एवं डाल्टन शिक्षण विधि के प्रभाव को जानने के लिए सर्वप्रथम दो समरूप समूह का निर्माण किया गया व समान विषयवस्तु, नियंत्रित समूह को परम्परागत शिक्षण विधि एवं प्रयोगात्मक समूह को डाल्टन शिक्षण विधि द्वारा पढ़ाया गया दोनो शिक्षण विधियों से विद्यार्थियों को पढ़ाने के उपरान्त परंपरागत शिक्षण विधि के समूह का मध्यमान 60.75 एवं मानक विचलन 9.72 प्राप्त हुआ उसी प्रकार डाल्टन शिक्षण विधि से पढ़ाये गये समूह का मध्यमान 73 तथा मानक विचलन 9.56 दोनों समूहों के मध्यमान के मध्य अंतर 12.25 का है। इनके अनुसार मानक त्रुटि 3.13 प्राप्त हुई जिससे टी का मान 3.91 प्राप्त हुआ जिसका सारणी मान .01 स्तर पर 2.71 से अधिक है अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकार हो जाती है। तथा कहा जा सकता है कि परंपरागत शिक्षण विधि की तुलना में डाल्टन शिक्षण विधि अधिक प्रभावशाली है।

अध्यापक ही किसी भी देश का भविष्य सवांरने वाले होते हैं। तभी तो डा0 कोठारी ने कहा था कि "The Destiny of India Beingh Shaped In her Classrooms". अध्यापक की इसी गुणवत्ता को देखते हुए प्राचीन काल से ही समाज ने बालक के सर्वांगीण विकास की रूपरेखा निश्चित कर इसे कार्यरूप में परिणित करने का महत्वपूर्ण कार्य अध्यापक को ही सौप दिया था। इसी कारण प्राचीन काल से ही अध्यापक शिक्षा, कक्षा नाटकीय पद्धति के नाम से जानी जाती थी। शिक्षण वह क्रिया है, जिसके द्वारा शिक्षक, छात्र तथा विषय के मध्य संबंध स्थापित होता है। 'शिक्षण–शिक्षक तथा शिक्षार्थी में 'शिक्षक' तथा शिक्षार्थी सक्रिय बिन्दु है। इस प्रकार सम्पूर्ण शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षक जितना सक्रिय एवं उत्साही रहता है। तो छात्र भी सक्रिय एवं उत्साही रहता है। क्योंकि जब तक ये शिक्षण प्रक्रिया के दोनों बिन्दु सक्रिय नहीं रहेंगे, परस्पर सिखाने एवं सीखने की क्रिया में आवश्यक सहयोग न प्रदान करेंगे तब तक शिक्षण पक्रिया सफल नहीं हो सकती। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में शिक्षक के पास अपना हथियार जो उसकी शिक्षण विधियाँ है, का उपयुक्त चुनाव अति आवश्यक है। शिक्षण अंग्रेजी के शब्द Teaching का हिन्दी पर्याय है। शिक्षण एक सामाजिक प्रकिया है। अतः इस पर प्रत्येक देश की शासन–प्रणाली सामाजिक दर्शन, सामाजिक परस्थितियों तथा मूल्यों आदि का प्रभाव पड़ता है।

वर्तमान समय में भूगोल शिक्षण का महत्व अत्याधिक बढ़ गया है। इस संबंध में यूनेस्को (UNESCO) ने कहा कि ''भूगोल से सर्वाधिक महत्व की बात यह होती है। कि राजनितिक विभाजनों के बावजूद धरती के वासी अपने –अपने आर्थिक एवं सांस्कृतिक संबंधों में उत्तरोंत्तर परस्पर निर्भर होते जा रहे है।''

भूगोल के ज्ञान तथा विषय–वस्तु के विस्तार के साथ उनकी शिक्षण–विधियाँ भी विकसित होती गयी। भूगोल–शिक्षक का कर्तव्य है कि शिक्षण–विधियों को निशचित करने में पाठ्य वस्तु की प्रकृति तथा

बालकों की आयु, रूचि, योग्यता का सदैव ध्यान रखना चाहिए। आवश्यकतानुसार शिक्षण विधियों का मिश्रण करना भी आवश्यक होगा। भूगोल शिक्षण की प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित है–

(1) निरीक्षणात्मक (2)वर्णनात्मक (3) भ्रमणात्मक (4) प्रादेशिक
(5) तुलनात्मक (6) डाल्टन (7) प्रोजेक्ट (8) वैज्ञानिक (9) क्रियात्मक आदि।

भूगोल शिक्षण विधियों को समझने से पहले भूगोल को जानना आवश्यक प्रतीत होता है। भूगोल दो शब्दों भू+गोल से मिलकर बना है अर्थात् इसमें समस्त पृथ्वी एवं उसके ग्रहीय संबंधों को सम्मिलित किया जाता है। वर्तमान में भूगोल विषय के विज्ञान वर्ग तथा कला वर्ग दोनों के अन्तर्गत रखा जाता है। इस प्रकार भूगोल शिक्षण में विज्ञान एवं कला दोनों विषयों से संबंधित विधियों का प्रयोग किया जाता है। इन विधियों के प्रयोग के लिए आवश्यक है कि छात्रों का बौधिक स्तर एवं उसकी रूचियों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। तभी वांक्षित लक्ष्य की प्राप्ति हो सकेंगी।

- **शिक्षण विधिः–**

यह अंग्रेजी के Teaching Method से बना है जो लैटिन भाषा से लिया गया है। जिसका अर्थ Mode या way या रास्ता होता है।

- **परंपरागत शिक्षण विधिः–**

यह सबसे प्राचीन पद्धति है। इसमें अध्यापक कक्षा में व्याख्यान देता है। और छात्र उसे सुनते हैं। इसे अध्यापक केन्द्रित विधि भी कहा जाता है।

- **डाल्टन शिक्षण विधिः–**

इसमें शिक्षक छात्रों का मार्ग–निर्देशन करता है। और बालक स्वयं अध्ययन द्वारा ज्ञान प्राप्त करते हैं। बालको की कठिनाई दूर करने में स्वयं अध्ययन करना पड़ता है। छात्रों का व्यक्तिगत ध्यान रखकर शिक्षा दी जाती है। और प्रत्येक बालक को अपनी शक्तियों के अनुरूप प्रगति करने का अवसर प्रदान किया जाता है।

समस्या से सम्बन्धित साहित्य–

- **झॉ, आई** (1979) ''हाईस्कूल स्तर पर जीव विज्ञान की विभिन्न शिक्षण विधियों के प्रयोग का तुलनात्मक अध्ययन'' पर किये गये अपने अनुसंसधान मे पाया की जो विधियाँ कार्य–क्रिया आधारित होती है। उनकी उपलब्धि भी अधिक रहती (PHD.Edu. Pat.v.1979)
- **मोहम्मद मियान** (1982) ''गणितीय सर्जनात्मकता विकसित करने में प्रभावशाली शिक्षण विधियों पर एक प्रयोग'' नामक शिर्षक की पी0 एच0 डी0 में इन्होने निष्कर्ष पाया कि गणितिय सृजनात्मकता के विकाश में समस्या समाधान एवं प्रोजेक्ट जैसी विधियाँ अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुई। (phd.edu. Jmi. 1982)
- **मुधु, वी0** (1978) ''ए स्टडी ऑफ प्रिवेन्ट स्टेअस ऑफ इन्ट्रक्सनल प्रासिड्युरस इन बायोलाजी इन हाईस्कूल'' अपने अध्ययन में पाया कि जिव विज्ञान के अध्ययन में अनुदेशनात्मक प्रक्रिया का प्रभाव अधिक पड़ता है।
- **कमला कान्त आई0एस** (1968) एस0 सी आ0 टी0 हैदराबाद अपने शोध प्रबंध में ''भौतिकी शिक्षण में समास्या समाधान एवं परंपरागत शिक्षण विधियों की प्रभाव शीलता का अध्ययन'' यह पाया कि परंपरागत शिक्षण विधियों की अपेक्षा समस्या समाधान विधि के द्वारा किया गया शिक्षण अधिक प्रभावशाली रहा जिससे उसकी उपलब्धि भी अधिक रही (SCERT हैदराबाद.1968)
- **साहजहान.एम.एम.** (1980) ''पूर्व माध्यमिक स्तर पर थाट माडयूल का विज्ञान शिक्षण में एक प्रयोगात्मक अध्ययन'' का अपने शोध प्रंबध मे यह निष्कर्ष पाया कि इस स्तर पर माड्यूल अधिक प्रभावी सिद्ध होते है। तथा इससे उपलब्धि भी प्रभावित होती है। (Ph.D. edu.Msu.(1980))
- **वेल्च, माइकल और मॉरिस रानाल्ड वी0** (2001) ''टिचिंग विश्व इतिहास और भूगोल के लिए बहुसांस्कृतिक नाटकों का एक संकलन Dubugue, कबः केंडल/ हंट का अध्ययन भी भूगोल विषय में प्रदर्शन या नटकीय अध्ययन द्वारा किया गया था।

- **Engle और Ochoa (1988)** ''एक लोकतंत्र मे नागरिक का विकाश'' नामक शोध प्रबंध मे अभ्यास और प्रयोग की एक विधि के रूप में कार्य किया इस अध्ययन में इन्होने पाया कि यह विधि सीखने अधिक कारगर सिद्ध हुई।

शोध के उद्देश्य–

- माध्यामिक स्तर पर भूगोल शिक्षण में डाल्टन शिक्षण विधि तथा परंपरागत शिक्षण विधि से किये गये शिक्षण द्वारा विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध की परिकल्पनाएँ–

- माध्यमिक स्तर पर भूगोल शिक्षण में डाल्टन शिक्षण विधि तथा परंपरागत शिक्षण विधि द्वारा किये गयें शिक्षण से प्राप्त विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर नही हैं।

शोध अभिकल्प–

प्रयोगात्मक शोध अभिकल्प में नियंत्रित तथा प्रयोगात्मक समूह का बटवारा कक्षा के आधार पर किया गया था। कक्षा ग्यारह के विद्यार्थियो की कक्षा दस के प्राप्तांक ,सामाजिक विषय के आधार पर समूह निर्मित हुआ जिनपर इ0बी0टी0 प्रसासित करते हुए भूगोल विषय की शैक्षिक उपलब्धि का ऑकड़ा इकठ्ठा किया गया तत्पश्चात निर्मित दोनो समान समूहो मे से प्रयोगात्मक समूह को डाल्टन शिक्षण विधि से पढाया गया तथा नियंत्रित समूह को परम्परागत शिक्षण विधि से पढाया गया। तदुपरान्त उनपर उपलब्धि परीक्षण प्रशासित किया गया। प्रस्तुत शोध में प्रयोगात्मक शोध विधि का प्रयोग किया गया।

जनसंख्या एवं न्यादर्श–

प्रस्तुत अध्ययन में जनसंख्या के रुप मे जौनपुर जनपद के माध्यमिक स्तर के समस्त कक्षा 11 के विद्यार्थि जनसंख्या के रुप मे परिभाषित किये गये। प्रस्तुत अध्ययन में 40 विद्यार्थियों को सोद्देश्य न्यादर्शन के आधार पर चुना गया।

शोध उपकरण–

स्वनिर्मित पाठ्ययोजना एवं भूगोल उपलब्धि परीक्षण उपकरण के रूप में प्रयुक्त किया गया।

प्रयुक्त सांख्यिकीय विधियॉ–

प्रस्तुत अध्ययन में मध्यमान, मानक विचलन एवं टी परीक्षण सांख्यिकीय विधियों को प्रयुक्त किया गया।

शोध की परिसीमायें:–

- प्रस्तुत अध्ययन को जौनपुर जनपद के राजा हरपाल सिंह इण्टर कालेज सिंगरामउ के कक्षा 11 के ग्रामीण स्तर के विद्यार्थियों तक ही सीमित किया गया तथा इसमें केवल परंपरागत शिक्षण विधि व डाल्टन शिक्षण विधि को समाहित किया गया है।

आंकड़ों का विश्लेषण–

- तालिका 1. माध्यमिक स्तर पर भूगोल शिक्षण में परंपरागत शिक्षण विधि एवं डाल्टन शिक्षण विधि की आपस में टी परीक्षण द्वारा; विश्लेषण एवं व्याख्या

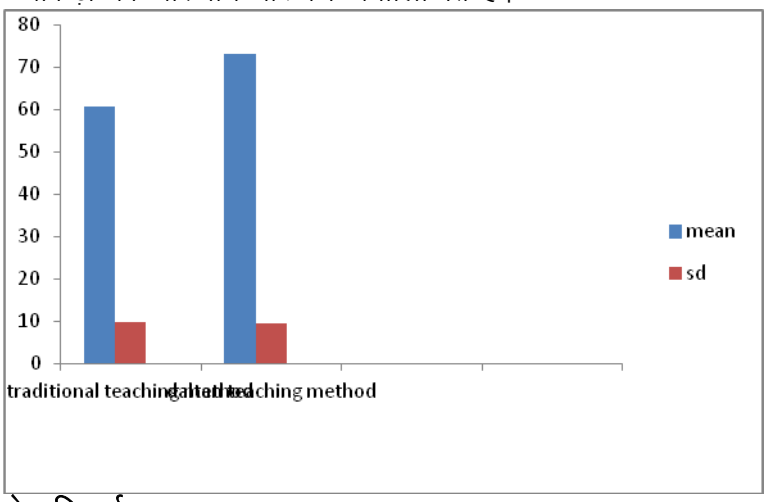
शिक्षण विधि	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमानों का अन्तर	मानक त्रुटि	टी प्राप्तांक	सार्थकता स्तर	सारणी मान
परंपरागत शिक्षण विधि	20	60.75	9.72	12.25	3.13	3.91	सार्थक	0.01 पर 2.71
डाल्टन शिक्षण विधि	20	73	9.56					
निष्कर्ष	दोनों स्तरों पर शून्य परिकल्पना अस्वीकार							

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होता है। कि दोनो शिक्षण विधियों से विद्यार्थियो को पढ़ाने के उपरान्त परंपरागत शिक्षण विधि के समूह का मध्यमान 60.75 एवं मानक विचलन 9.72 प्राप्त हुआ उसी प्रकार

डाल्टन शिक्षण विधि से पढ़ाये गये समूह का मध्यमान 73 तथा मानक विचलन 9.56 दोनो समूहो के मध्यमान के मध्य अंतर 12.25 का है। इनके अनुसार मानक त्रुटि 3.13 प्राप्त हुई जिससे टी का मान 3. 91 प्राप्त हुआ जिसका सारणी मान .01 स्तर पर 2.71 से अधिक है अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकार हो जाती है। तथा कहा जा सकता है कि परंपरागत शिक्षण विधि की तुलना में डाल्टन शिक्षण विधि अधिक प्रभावशाली है।

प्रस्तुत अध्ययन के प्रत्यक्ष समर्थन मे कोई अध्ययन प्राप्त न हो सका परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से झाँ (1979) एवं मोहम्मद मियान (1982) का शोध अध्ययन समर्थन प्रदान करता है। जिससे प्रस्तुत अध्ययन को सम्बल मिलता है। इन विधियो की प्रभावशीलता के मध्य अन्तर का प्रमुख कारण छात्र सक्रियता है। शोधकर्ता ने डाल्टन शिक्षण विधि में विषयों के भार एवं स्वअध्ययन का उचित तालमेल बैठाने के उपरान्त कार्य किया जिससे उपलब्धि का अधिक होना स्वाभाविक है जबकि व्याख्यान विधि में ऐसा करना नही हो पाता है। जिसके कारण परंपरागत की अपेक्षा डाल्टन अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुई।

ग्राफीय निरूपण– आकड़ो का आरेखीय नीरूपण अधोलिखित है।



विश्लेषणोपरान्त शोध निष्कर्ष –

1. मध्यमिक स्तर पर भूगोल शिक्षण में परंपरागत शिक्षण विधि व डाल्टन शिक्षण विधि से किये गये शिक्षण द्वारा विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर है।
2. डाल्टन शिक्षण विधि द्वारा किया गया शिक्षण परंम्परागत शिक्षण विधि से प्रभावशाली होता है।

शैक्षिक निहितार्थ–

शोध एक उद्देश्य पूर्ण प्रक्रिया है प्रस्तुत शोध के माध्यम से विद्यार्थियो की शैक्षिक उपलब्धि एवं भविष्य के प्रति उत्तम दृष्टिकोण बनाने के लिए अध्यापको अपने विद्यार्थियो को उचित वातावरण प्रदान करना चाहिए। इस आधार पर विद्यालयो में शिक्षको को सबसे पहले सम्बन्धित शिक्षण विधियो का ज्ञान होना अति आवश्यक है। तथा इसके उपरान्त माध्यमिक स्तर के भूगोल शिक्षण में डाल्टन शिक्षण विधि का अधिक प्रयोग करना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. करलिंगर, फ्रेड0एन0 (2007) "*फाउण्डेशन ऑफ विहैवियरल रिसर्च*" नई दिल्ली : सूरजीत पब्लिशन्स, पृ0सं0140–152
2. कुलश्रेष्ठ, एस0पी (1982) "*शैक्षिक तकनिकी के मूल आधार*" आगराः विनोद पुस्तक मंदीर, पृ0सं0 47–68,98–110, 445–475,
3. गुप्ता, एस0पी0 (2012) "*आधुनिक मापन मूल्यांकन*" इलाहाबादः शारदा पुस्तक भवन, पृ0सं0–35–71,169–82

4. गुप्ता, एस0पी0 (2007) ''*सांख्यिकीय विधियां*'' (तृतिय संस्करण) इलाहाबाद शारदा पुस्तक भवन, पृ0सं0–307–359
5. गुप्ता, एस0पी0गुप्ता, अलका (2012) ''*उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान*'' इलाहाबादः शारदा पुस्तक भवन, पृ0सं0–352–356
6. बेस्ट, जॉन0 डब्ल्यू0 (1972) ''*रिसर्च इन एजूकेशन*'', न्यूजर्सीः प्रिन्टिस हाल, पृ0सं0 403
7. भट्टाचार्य, जी0 सी0 (2010) ''*अध्यापक शिक्षा*'' (पंचम संस्करण) आगरा : अग्रवाल पब्लिकेशन्स, पृ0सं0–177–791
8. भट्टाचार्य, जी0 सी0 (2009) ''*भूगोल शिक्षण*'' द्वितीय संस्करण) आगरा : अग्रवाल पब्लिकेशन्स, पृ0सं0–24–32
9. भटनागर, सूरेश (1998), ''*शिक्षा मनोविज्ञान,*'' मेरठ : लायल बुक डिपो, पृ0सं0 248–49
10. राय, पारसनाथ और राय, सी0पी0 (2009) ''*अनुसंधान परिचय*'' आगराः लक्ष्मीनरायण अग्रवाल, पृ0 सं0 148–52
11. लाल, रमन बिहारी (2013)''*शिक्षा के दर्शानिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त*'' (अठ्ठारहवा संस्करण) मेरठः रस्तोगी पब्लिकेशन्स, पृ0सं0 263–77
12. शर्मा आर0 ए (2013) ''*शिक्षा अनुसंधान के मूल तत्व एवं शोध प्रक्रिया*'' मेरठ : आर0 लाल0 बुक डिपो, पृ0 सं0 153–93,
13. सिंह, ए0के0 (2010) ''*मनोविज्ञान,समाजशास्त्र तथा शिक्षा मे शोध विधियाँ,*'' वाराणसी : मोतीलाल बनारसीदाश, पृ0सं0,55–65 125–69
14. सिंह, हरनारायण (1983) , ''*भूगोल शिक्षण*'' आगरा 2ः विनोद पुस्तक पृ0सं0, 66–107
15. त्रिपाठी, मधुसूदन (2012) ''*शिक्षा अनुसंधान*'' नई दिल्लीः ओमेगा पब्लिकेशन, पृ0 सं0–26–29
16. दैनीक जागरण सामाचार पत्र ''संपादकीय : शिक्षा की गुणवत्ता और शिक्षा की नीति पर एक आलोचनात्मक लेख'' सुधीर मिश्र, दिनांक 24.08.2011.

प्राचीन भारत के व्यापारिक मार्ग

चमन अप्पा
शोध छात्र, प्रा०भा०इति०सं० एवं पुरातत्त्व विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

परिवहन किसी भी देश के आर्थिक जीवन का प्रमुख आधार होता है। परिवहन उसका उद्देश्य चाहे व्यापार रहा हो या जीविकोपार्जन, किन्तु सभ्यता के विकास में इसका विशेष महत्व रहा है। मानव सभ्यता के विकास का परिवहन के विकास के साथ सम्बन्ध है। वह दिवस जब मानव इस भूतल पर आया, पथ विकास कथा का प्रथम दिन था। गतिशील मानव निष्क्रिय हो एक स्थल पर कभी भी बैठा न रहा। उसने जंगलों, मैदानों, नदियों, पर्वतों एवं रेगिस्तानों के मध्य से मार्ग ढूँढ निकाले। ये मार्ग कालान्तर में व्यापारिक मार्ग के रूप में विकसित हुए। परन्तु उस समय यात्रा सरल नहीं थी। रास्ते में डाकुओं तथा जंगली जानवरों का खतरा सदैव बना रहता था, इसलिये अकेले यात्रा करना निरापद नहीं समझा जाता था। अतः मानव ने इस कठिनाई से पार पाने के लिए एक साथ समूह में यात्रा करने का निश्चय किया और इस प्रकार सार्थ–प्रथा की नींव पड़ी। सार्थ का नेता सार्थवाह कहलाता था। कालान्तर में इन्हीं सार्थवाहों ने व्यापारिक मार्गों के विकास में मकत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। पालि साहित्य में परिवहन सम्बन्धी उद्धरण भरे पड़े हैं।

बुद्ध के समय एवं बाद में व्यापारिक मार्गों का उल्लेख करने के लिए निःसन्देह पालि साहित्य अत्यन्त महत्वपूर्ण श्रोत है। उत्तर भारत के मैदानों में पेशावर से ही महाजनपाि पूरब की ओर जरा–सा दक्षिणाभिमुख होकर चलता है। सिन्धु के मैदान के रास्ते पंजाब की नदियों के साथ–साथ दक्षिण की ओर जरा–सा पश्चिमाभिमुख होकर चलते हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि तक्षशिला होकर महाजनपथ काशी और मिथिला तक चलता था। जातकों से पता चलता है कि बनारस से तक्षशिला का रास्ता घने जंगलों से होकर गुजरता था और उसमें डाकुओं और पशुओं का भय बराबर बना रहता था। तक्षशिला उस युग में भारतीय और विदेशी व्यापारियों का मिलन केन्द्र था। बौद्ध–साहित्य से इस बात का पता चलता है कि बनारस, श्रावस्ती और सोरेय्य (सोरों) के व्यापारी तक्षशिला में व्यापार के लिए आते थे।[1] चुल्लवग्ग के अनुसार व्यापार के लिए श्रावस्ती से राजगृह तथा प्रतिष्ठान, बनारस से उज्जयिनी तथा विदेह से गान्धार तक स्थल मार्ग के व्यपारी आते–जाते थे।[2] श्रावस्ती से राजगृह के मार्ग में तल्थ, कपिलवस्तु, कुशीनगर, पावा, हस्तिग्राम, भण्डग्राम, वैशाली, पाटलिपुत्र और नालन्दा पड़ते थे। श्रावस्ती से प्रतिष्ठान के बीच साकेत, कौशाम्बी, विदिशा, गोनर्द, उज्जयिनी और महिष्मति आदि नगर पड़ते थे। पालि साहित्य से भी इस काल के व्यापारिक मार्गों की अच्छी जानकारी प्राप्त होती है। रिज डेविड्स के अनुसार तत्कालीन समय के प्रमुख मार्ग निम्न प्रकार से थे –

उत्तर से दक्षिण–पश्चिम को – यह मार्ग कौशल की राजधानी श्रावस्ती से गोदावरी नदी के किनारे स्थित प्रतिष्ठान तक जाता था और उल्टी दिशा में उज्जयिनी, विदिशा और कौशाम्बी होते हुए पुनः श्रावस्ती पहुँचता था। इस राजमार्ग के सबसे प्रमुख सायक मार्ग वे थे जो दक्षिण–पश्चिम भारत के प्रमुख नगरों, जैसे– उज्जयिनी, प्रतिष्ठान तथा नगर को भृगुकच्छ से जोड़ते थे।

उत्तर से दक्षिण–पूर्व को

यह मार्ग श्रावस्ती से राजगृह तक जाता था लेकिन यह मार्ग सीधा न जाकर श्रावस्ती से हिमालय के समीप होता हुआ वैशाली के उत्तर में हिमालय की उपत्यका में पहुँचता था और वहाँ से दक्षिण की ओर मुड़ता था। इसका प्रमुख कारण शायद यह था कि हिमालय से निकलने वाली नदियों को ऐसे स्थान से पार किया जा सके, जहाँ कि उनका अधिक विस्तार न हो। नदियाँ पहाड़ के समीप बहुत छोटी होती हैं और वहाँ से अधिक गहरी भी नहीं होती है। इस मार्ग पर रास्ते में सेतव्य, कपिलवस्तु, कुशीनगर, पावा, हत्थिग्राम, भण्डग्राम, वैशाली, पाटलिपुत्र और नालन्दा आदि नगर पड़ते थे। यह मार्ग आगे गया की तरफ मुड़ जाता था और वहाँ एक अन्य मार्ग से मिल जाता था, जो बनारस से

ताम्रलिप्ति की ओर जाता था। मथुरा से लेकर राजगृह तक महाजनपथ का अच्छा वर्णन बौद्ध–साहित्य में मिलता है। मथुरा से यह रास्ता बेरंजा, सोरेय्य, संकिस्स, कण्णकुब्ज होते हुए पयागतिथ्य पहुँचता था, जहाँ वह गंगा पार करके बनारस पहुँचता था।[3] इस रास्ते पर वरण (वारण–बुलन्दशहर) और आवली (अखल) भी पड़ते थे। डेरजा की ठीक–ठीक पहचान नहीं हुई है; लेकिन यह जगह शायद धौलपुर जिले में बारी के पास कहीं रही होगी, जहाँ से अलबरूनी के समय में महाजनपथ का एक खण्ड शुरू होता था। अंगुत्तरनिकाय में कहा गया है कि बुद्ध ने वेरंजा के पास सड़क पर भीड़ को उपदेश दिया।[4] सोरेय्य की पहचान एटा जिले के प्रसिद्ध तीर्थ सोंरों से की जाती है। इस नगर का तक्षशिला के साथ व्यापारिक सम्बन्ध जा।[5] संकिस्सा की पहचान फर्रूखाबाद जिले के संकीसा गाँव से की जाती है। बौद्ध–साहित्य के अनुसार श्रावस्ती से यह तीस योजन पर पड़ता था। रेवत थेर, सोरेय्य (सोरों) से सहजाति के रास्ते पर (भीटा, इलाहाबाद) संकिस्स, काण्णकुब्ज, उदुम्बर और अग्गलपुर होकर गुजरे। आलवक, श्रावस्ती के तीस योजन और राजगृह के रास्ते पर बनारस से दस योजन पर था।[6] कहा जाता है कि एक समय बुद्ध श्रावस्ती से कीटगिरि (केराकत, जौनपुर जिला, उत्तर प्रदेश) पहुँचे, वहाँ से वे आवली होते हुए अन्त में राजगृह आ पहुँचे।[7] कौशाम्बी सार्थों का प्रधान अड्डा था और यहाँ से कौशल और मगध को बराबर रास्ते चला करते थे।[8] नदी के रास्ते बनारस की दूरी यहाँ से तीस योजन थी?। महिष्मति होकर दक्षिणापथ वाला रास्ता कौशाम्बी होकर गुजरता था।[9]

मथुरा से विदिशा तक

इस मार्ग से देवगढ़ कांतिपुरी–पद्मावती तथा तुम्बबन (जिला गुना) आदि पड़ते थे। डमबवन से एक मार्ग कौशाम्बी को जाता था।

पूर्व से पश्चिम

यह मार्ग भारत की प्रसिद्ध नदी गंगा और यमुना के साथ–साथ जाता था। इन नदियों में नौकाएँ और जहाज भी चलते थे। इस काल में गंगा नदी में सहजाती नगर तक तथा यमुना में कौशाम्बी तक जहाज आया–जाया करते थे।[10] इस मार्ग में कौशाम्बी का बहुत अधिक महत्व था। यहाँ पर उत्तर से दक्षिण–पश्चिम को जाने वाला मार्ग भी मिल जाता था। और नौकाओं तथा जहाजों से आने वाला माल भी यहाँ उतार दिया जाता था। फिर उसे गाड़ियों पर लादकर उत्तर और दक्षिण में पहुँचाया जाता था।[11]

इन मार्गों के अतिरिक्त कुछ अन्य महत्वपूर्ण मार्ग भी इस काल में विद्यमान थे। इनमें से एक मिथिला से कश्मीर और गान्धार तक जाता था। दूसरा मार्ग राजपूताना से मरूस्थल होता हुआ सौवीर प्रदेश तक जाता था। तीसरा मार्ग राजगृह से बनारस, साकेत तथा श्रावस्ती होता हुआ तक्षशिला को जाता था। पूर्व में एक अन्य मार्ग वाराणसी से स्वर्णभूमि जाता था। इसके अतिरिक्त भृगुकच्छ से बर्मा तक और चम्पा से बर्मा तक भी अन्य व्यापारिक मार्ग थे।

विदेशी व्यापारिक मार्ग

पालि साहित्य से ज्ञात होता है कि इस समय में भारत के पूर्वी तथा पश्चिम देशों के साथ घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध थे। भारतीय व्यापारी प्रायः नदी मार्ग से समुद्र तक पहुँचते थे। चम्पा और बनारस उस समय अच्छे बन्दरगाह माने जाते थे, जहाँ से जहाज पहले नदी में और फिर समुद्र में जाते थे। परन्तु सुदूरवर्ती देशों में जाने के लिए चम्पा और बनारस जैसे नदी तटवर्ती नगर विशेष उपयुक्त नहीं हो सकते थे। इसके लिए उस समय समुद्र तट पर भी अनेक प्रसिद्ध बन्दरगाह थे, जिनमें पश्चिमी समुद्र तट पर भृगुकच्छ,[12] सोपारा,[13] सौवीर[14] तथा पूर्वी समुद्र तट पर करम्बिय,[15] गम्भीर[16] और सेखि[17] महत्वपूर्ण बन्दरगाह थे, जहाँ से जहाज सुदूरवर्ती देशों में जाते थे। वलाहस्स जातक ताम्रपर्णि के साथ व्यापार का उल्लेख करता है।[18] महाजनक जातक में सुवर्णभूमि की यात्राा का उल्लेख मिलता है।[19] बावेरू जातक में बनारस के कुछ व्यापारियों द्वारा अपने साथ दिशाकाक लेकर समुद्री मार्ग से बेबीलोन पहुँचने का उल्लेख मिलता है। सुप्पारक जातक के अनुसार कुछ व्यापारी समुद्री मार्ग द्वारा भृगुकच्छ से बेबीलोन और मिश्र आदि पश्चिमी देशों की यात्रा पर गये। अपनी इस यात्रा के बीच में उन्हें खुरमाल, अग्निमाल, नलमाल और वलमामुख नामक समुद्र मिले।[20] लेकिन इनकी पहचान के सम्बन्ध में मतभेद है। डॉ० जायसवाल ने खुरमाल की पहचान फारस के कुछ भागों अर्थात दक्षिणी–पूर्वी अरब से की है।[21] अग्निमाल अदन के पास अरब का समुद्री किनारा और सुमाली लैण्ड के कुछ भागों का द्योतक है।

नलमाल लाल सागर और भूमध्यसागर को जोड़ने वाली नहर है। वलभामुख भूमध्यसागर का कुछ भाग है, जिसमें आज भी ज्वालामुखी पहाड़ है ।यदि डॉ० जायसवाल की पहचान ठीक है तो यह मानना पड़ेगा कि भारतीय निर्यातकों को समुद्री मार्गों का पूरा ज्ञान था।

परिवहन के साधन

कुछ काल में व्यापार मुख्य रूप से बैलगाड़ियों के माध्यम से होता था। जातकों में सार्थवाहों द्वारा 500 बैलगाड़ियों द्वारा व्यापार किया जाता था। मजबूत काष्ठ वाली तथा वज्रकील और लोहपट्ट से युक्त गाड़ी भार वहन करने में समर्थ समझी जाती थी, जिसे 'शकट' कहा जाता था।[22] गोलिंग एक मध्यम आकार की बैलों द्वारा खींची जाने वाली गाड़ी थी। साधारणतया घोड़ों के बच्चों तथा बछड़ों को गाड़ियों में जोतने के उपर्युक्त नहीं समझा जाता था। ऐसे बैलों को अतिरिक्त रूप से बलवान हों वे एक ही समय में एक से अधिक शकटों को खींचते थे।[23] घोड़ों द्वारा खींचे जाने वाले रथों को 'अश्वरथ', ऊँटों द्वारा खींचे जाने वाले रथों को 'उष्ट्ररथ', गदहों द्वारा खींचे जाने वाले रथों को 'गर्दभरथ' कहा जाता था। स्थलीय साधनों में रथ मुख्य था।[24] हाथी राजसी सवारी थी, पालकी (शिविका) का प्रयोग विशेषकर महिला वर्ग में होता था।[25] जलीय यातायात में केवल नाव तथा जलयान ही मुख्य था। समूह यान बहुत विशालकाय (यानपात्र) होते थे, जिन्हें कहुत कुशल नाविक (ससिद्धयानपात्रिका) संचालित करते थे। नावों के अलावा छोटी–छोटी डोंगी (उड्डुम्प)[26] तथा बेड़ा (कुल्ल)[27] भी नदियों तथा जलाशयों में प्रयुक्त होते थे।

सन्दर्भ सूची

1. डिक्शनरी ऑफ पालि प्रापर नेम्स, पृ०, 982
2. चुल्लवग्ग, 64, गन्तिल जातक, 243
3. विनय पिटक, 3, 2
4. डिक्शनरी ऑफ पालि प्रापर नेम्स, देखें वेरंजा
5. धम्मपद अट्ठकथा, 323
6. वही, 3, 224
7. विनय, 2, 170–75
8. विनय, 1, 277
9. सुत्तनिपात, 1010–1013
10. जातक–1, पृ०, 98–126
11. जातक–5, पृ०, 471
12. जातक–3, पृ०, 126–28
13. जातक–4, 138
14. जातक–3, पृ०, 470
15. जातक–5, पृ०, 75
16. जातक–1, पृ०, 239
17. जातक–1, पृ०, 111
18. जातक–2, पृ०, 127
19. जातक–4,पृ०, 134, 6134, 4/34–42
20. जातक–4, पृ०, 10
21. जर्नल ऑफ बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, भाग–6, पृ०, 195
22. दीघनिकाय–2, पृ०, 110, 234
23. विनयपिटक–4, पृ०, 51
24. महावग्ग, द्वारिकादास शास्त्री, पृ०, 578
25. महावग्ग, पृ०, 211
26. महावग्ग, पृ०, 377
27. महावग्ग, पृ०, 377